अध्याय-7

दुष्यंत कुमार का काव्य-शिल्प

1. भाषा
2. बिम्ब
3. प्रतीक
4. अलंकार
5. मुहावरे
6. शैली
7. मिथक

सन्दर्भ-सूची

कथ्य और शिल्प रचना के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हैं । भाववादी आलोचक रचना में कथ्य को प्रमुख मानते हैं तो कलावादी आलोचक शिल्प को । यह हमेशा से आलोचना का विषय रहा है कि इन दोनों में सर्वप्रमुख कौन है । खासकर प्रयोगवाद और नई कविता के दौर में तो यह बहस का प्रमुख मुद्दा ही था । प्रयोगवादी दौर के कवि शिल्पगत प्रयोग के लिए हमेशा आलोचना के केंद्र में रहे हैं । शिल्प के लिए अंग्रेजी में 'टेकनीक' शब्द का प्रयोग किया जाता है । काव्य-शिल्प के लिए काव्य-सौंदर्य, अभिव्यंजना-सौंदर्य, रचना-विधान, रूप-रचना, अभिव्यक्ति-विधान आदि समानार्थक शब्दों का प्रयोग होता है । भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार आदि का समुच्चय ही शिल्प कहलाता है । ये सभी उपादान मिलकर काव्य का ढाँचा तैयार करते हैं और अंततः एक काव्यकृति का निर्माण होता है । शिल्प का सीधा संबंध अभिव्यक्ति से है । कथ्य कविता की आंतरिक संरचना है और शिल्प बाह्य संरचना । रचनाकार अपनी अनुभूति को जिस माध्यम द्वारा सम्प्रेषणीय बनाता है, वही शिल्प है । शिल्प के सहारे कवि अपने अंतर्जगत को रूपाकार देता है, उसे प्रत्यक्ष करता है । इसके अभाव में कवि की आंतरिक संवेदना बाह्यरूप ग्रहण करने में असमर्थ है ।

शिल्प को परिभाषित करते हुए खगेंद्र ठाकुर लिखते हैं –"रूप को सजाने–सँवारने के लिए अनेक साधन जुटाए और काम में लाए जाते हैं । उन साधनों का विन्यास जिस तरह किया जाता है, उसे शिल्प कहा जाता है ।"[1]

शोरर शिल्प की महत्ता को बताते हुए लिखते हैं –''शिल्प ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक का अनुभव जो कि उसकी विषयवस्तु है, उसे अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश करता है । शिल्प वह एकमात्र साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है, जिसके माध्यम से वह उसके अर्थ को सम्प्रेषित करता है और अंततः उसका मूल्यांकन करता है ।''[2] इस कथन का आशय यही है कि शिल्प ही वह माध्यम है जिसके सहारे रचनाकार अपनी संवेदना को भलीभाँति समझ पाता है और सार्थक ढ़ंग से व्यक्त भी कर पाता है ।

एकांत श्रीवास्तव शिल्प के बारे में लिखते हैं –''सुगठित शिल्प में कविता की वस्तु अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करती है । चरम लक्ष्य यानी सम्प्रेषणीयता ।''[3] आलोचक का मानना है कि शिल्प कथ्य को सम्प्रेषणीय बनाकर, उसे सार्थक करता है । सम्प्रेषणीयता कविता के लिए अनिवार्य है क्योंकि इसके कारण ही रचना पाठक की सहृदयता प्राप्त करती है । कविता की प्रभावोत्पादकता उसकी सम्प्रेषणीयता में ही निहित रहती है ।

अतः कह सकते हैं कि शिल्प अभिव्यंजनात्मक शैली है । शिल्प के द्वारा कवि के अमूर्त भाव और विचार मूर्त हो जाते हैं । शिल्प के माध्यम से ही कवि की आंतरिक संवेदना शब्दबद्ध होकर बाह्य रूप ग्रहण करती है । रचनाकार के मन-मानस में जो भी भाव या विचार उद्वेलित होते हैं, शिल्प के माध्यम से उनका

निष्कासन होता है । शिल्प रचनाकार की संवेदना को सार्थक और संप्रेषणीय बनाता है । शिल्पगत प्रयोग में इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि शिल्प का प्रयोग सहज और सन्दर्भानुकूल हो । शिल्प तभी प्रभावशाली हो पाएगा जब वह रचनाकार की संवेदना को संप्रेषित करने में पूर्ण समर्थ हो सकेगा ।

कवि दुष्यंत कुमार कविता में शिल्प के महत्त्व पर लिखा है – ''नया कवि अकसर शिल्प के प्रति आग्रहशील नहीं है क्योंकि उसके सामने तात्कालिक प्रश्न नए मूल्यों की खोज का है – टेक्नीक का नहीं ।

उसका विवेक 'टेंशन' या ' संघर्ष ' की भयंकर स्थिति से गुजर रहा है जिसमें शिल्प के छोटे–मोटे प्रश्न स्वभावत: गौण हो जाते हैं और एक बड़ा प्रश्न उभरता है ।''[4] जाहिर है कि कवि के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण वे प्रश्न है जो 'जीवन से जुड़े' हुए हैं । अभिव्यक्ति से कहीं बड़ा प्रश्न है अनुभूति का । अनुभूति की तीव्रता अभिव्यक्ति को सशक्त बनाती है । हिन्दी के जितने भी कालजयी लेखक है, उनकी अनुभूति इतनी तीव्र रही है कि अभिव्यक्ति के लिए उन्हें सोचना ही नहीं पड़ा । कबीर, निराला, नागार्जुन ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने शिल्प को गढ़ने की तनिक भी चेष्टा नहीं की फिर भी उनकी अभिव्यक्ति अनुभूति को अभिव्यक्त करने में समर्थ हुई है । दुष्यंत कुमार की कविता में शिल्प का सहज और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है । उनकी कविताओं का शिल्प-पक्ष, भाव-पक्ष की भाँति ही सशक्त है । उन्होंने ऐसे शिल्प को अपना काव्यगत आधार बनाया जो महज चौंकाने या

आतंकित करने के लिए नहीं है, अपितु रचनाकार और पाठक के बीच आत्मीय संवाद स्थापित करने में अहम भूमिका निभाती है । उनके शिल्प में उनकी जन-प्रतिबद्धता दृष्टिगत होती है । कवि ने लिखा है –"मैं बराबर महसूस करता हूँ कि कविता में आधुनिकता का छद्म कविता को बराबर पाठकों से दूर करता गया है । कविता और पाठक के बीच इतना फासला कभी नहीं था, जितना आज है । इससे भी ज्यादा दु:खद बात यह है कि कविता शनैः-शनैः अपनी पहचान और कवि अपनी शख्सियत खोता गया है । ऐसा लगता है, गोया दो दर्जन कवि एक ही शैली और शब्दावली में एक ही कविता लिख रहे हैं । इस कविता के बारे में कहा जाता है कि यह सामाजिक और राजनीतिक क्रांति की भूमिका है और यह दलील खोटी है । जो कविता लोगों तक पहुँचती नहीं, उनके गले नहीं उतरती, वह किसी भी क्रांति की संवाहिका कैसे हो सकती है ।"[5]

दुष्यंत कुमार की संवेदना उनके आस–पास उदास होकर फिरते रहने वालों को देखकर प्रखर हो जाती है । वही ममत्व उनकी रचनाधर्मिता में अनायास प्रकट होती है, इसीलिए उनकी शिल्पगत रचनात्मकता में कोई सायास जादू या कारीगरी दिखाई नहीं देती है । दुष्यंत कुमार ने ऐसे शिल्प से अपनी कविता को सँवारा है, जो उनके कथ्य को सम्प्रेषित कर उस पाठक से तादात्म्य स्थापित कर सके, जो उनका वरेण्य है ।

दुष्यंत कुमार के काव्य-शिल्प के विविध उपादान इस प्रकार हैं – भाषा, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, मिथक, मुहावरे तथा शैली ।

1. भाषा

भाषा भावाभिव्यक्ति का सबसे ठोस और सार्थक माध्यम माना जाता है । हमारे मौन भाव और विचार, भाषा के द्वारा ही मुखर हो पाते हैं । नन्ददुलारे वाजपेयी काव्य-भाषा के संबंध में लिखते हैं –"कवि के आशय की अभीप्सित व्यंजना सामान्यतः काव्य-भाषा का प्रयोजन है । आशय की अनुरूपता के साथ भाषा का स्वरूप-विधान कविता की भाषा-योजना का प्रमुख नियामक तत्व है । दूसरे शब्दों में भाव और भाषा का अविच्छिन संबंध साहित्य सर्जना का मुख्य उपादान और लक्षण है । इस तथ्य का निर्देश कविगण और विचारक प्राचीन काल से करते आए हैं । कालिदास ने वागर्थाविद सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये कह कर काव्य की भाषा और उसके आशय के सम्पृक्त होने का उल्लेख किया है । गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न पंक्ति के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास ने वाणी और उसके अर्थ की अभिन्नता द्योतित की है । अतएव सिद्धांत–रूप में कहा जा सकता है कि काव्य–भाषा का आदर्श स्वरूप वही है जो कवि के व्यक्तव्य को उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्त कर सके ।"[6] कथन से स्पष्ट है कि आलोचक भाव और भाषा के संबंध को अविछिन्न और अभेद मानते हैं । उनकी मान्यता है कि दोनों

की अर्थवत्ता एक-दूसरे के होने से ही है । किसी भी रचना में निहित भाव और विचार भाषा के माध्यम से ही प्रकट होते हैं । अतः यह अपेक्षित है कि काव्य-भाषा कवि के मनोभाव और संवेदना को सार्थक और सम्प्रेषणीय बना सके ।

नामवर सिंह ने लिखा है – "कविता शब्दों की संख्या से धनी नहीं होती, इस्तेमाल में आनेवाले शब्दों के 'सार्वजनिक मूल्य' से धनी होती है ।"[7] नामवर सिंह के विचारों पर गौर किया जाए तो यह बात सामने आती है कि वे कविता को सुन्दर और लुभावने शब्दों की नुमाइश नहीं मानतें । उनके लिए कविता की महत्ता और उपयोगिता इस बात में है कि कवि जिनके लिए कविता लिखता है और जिनके जीवन को सन्दर्भ स्वरूप अपने काव्य का आधार बनाता है, वह कविता उससे सम्पृक्त है या नहीं ? कविता में निहित शब्द उस साधारण को असाधारण तरीके से अभिव्यक्त कर पाता है कि नहीं ? जिस समाज के मूल्यों को वह अपने सृजन संसार में विन्यस्त करता है, वह कविता के रूप में समाज के व्यापक वर्ग की पक्षधर है या नहीं ? इस प्रसंग में एकांत श्रीवास्तव के विचार उल्लेखनीय है – "कविता के इतिहास में और उसकी दीर्घ परंपरा में इसके पर्याप्त प्रमाण हैं कि जब–जब कोई भाषा अपने जन के संघर्ष और उसकी आकांक्षा को व्यक्त करने में असमर्थ साबित हुई है, कविता उसे केंचुल की तरह छोड़कर आगे बढ़ गयी है । भाषा अपनी प्रकृति में धर्म और जाति निरपेक्ष ही नहीं बल्कि

जनतांत्रिक भी होती है । दरबारों में उसकी साँस घुटने लगती है । जीवन का लोक उसे पसन्द आता है, आभिजात्य नहीं ।''[8]

दुष्यंत कुमार की भाषा का अवलोकन करने के पश्चात् यह दृष्टिगत होता है कि वे हमेशा से उस भाषा के हिमायती रहे हैं जिसके माध्यम से वे उस अवाम तक पहुँच पाये जो उनके सृजन-कर्म की प्रेरणा है, जिनकी तकलीफ, हताशा, आक्रोश, हर्ष, अवसाद, आकांक्षा, टूटन, घुटन सभी से वे खुद को सम्पृक्त महसूस करते हैं । जिसकी दुनिया को वे अपने काव्य-संसार में चित्रित करते हैं । दुष्यंत कुमार की भाषा सीधी-सादी और सहज है । उनकी भाषा में बौद्धिकता का आडंबर दिखाई नहीं पड़ता । कवि 'आत्मीय-सी' भाषा में संवाद स्थापित करते हैं । कवि ने साधारण जन की भाषा को काव्यात्मक आधार पर ग्रहण किया है । शब्दों का सटीक प्रयोग करने के लिए कवि हमेशा सजग रहे हैं । उन्होंने हमेशा शब्दों के 'सार्वजनिक मूल्य' का ध्यान रखा है । कवि के लिए शब्द शक्ति है, प्राणदायिनी है –

'' कभी इन्हीं शब्दों ने
जिन्दा किया था मुझे
कितनी बढ़ी है इनकी शक्ति
अब देखूँगा
कितने मनुष्यों को और जिला सकते हैं ?''[9]

जन से हृदयस्थ संबंध स्थापित करनेवाले शब्दों ने मिलकर व्यक्ति दुष्यंत कुमार को कवि दुष्यंत कुमार बनाया है । अब कवि इन शब्दों को जनहित के लिए एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल करना चाहते हैं –

" मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ ,
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है ।"[10]

'शब्दों की पुकार' शीर्षक कविता में कवि 'सार्वजनिक मूल्य' की रक्षा के लिए कविता माँ से प्रार्थना करते हैं –

" शब्द नामधारी
सारे के सारे युवक, प्रौढ़ औ' बालक,
एक तुम्हारे इंगित की कर रहे प्रतीक्षा,
चाहे जिधर मोड़ दो
कोई उजर नहीं है–
ऊँची–नीची राहों में
या उन गलियों में
जहाँ खुशी का गुजर नहीं है–
लेकिन मंजिल तक पहुँचा दो, ओ कविता माँ !"[11]

कविता से गज़ल की ओर जाने के पीछे भी कवि की 'सार्वजनिक मूल्य' की रक्षा की मंशा थी । दुष्यंत कुमार शब्दों का कृत्रिम खेल खेलना नहीं चाहते और न ही

पाठकों के समक्ष शब्दों का मायाजाल उत्पन्न करना चाहते हैं । वे केवल और केवल उस सार्वजनिक समाज को चित्रित करना चाहते हैं जो उनकी सर्जनात्मकता की मूल प्रेरणा है । कवि ने लिखा है –''मैंने अपनी तकलीफ को ...उस शदद तकलीफ, जिससे सीना फटने लगता है, ज्यादा से ज्यादा सचाई और समग्रता के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए गज़ल कही है ।''[12] स्पष्ट है कि कवि अपनी ने दुहरी तकलीफ (जो व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी) को इस माध्यम के सहारे व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाने की कोशिश की है ।

विजय बहादुर सिंह ने दुष्यंत कुमार की गज़लों में व्याप्त खुरदरेपन के बारे में लिखा है –''भले ही यह नाजुक और मीठी गज़ल न हो, पर ऐसी भी क्यों हो जो लोगों के सामूहिक दु:खों और उनसे पैदा हुई उदासियों को ललित कला के छलावे में बदल दे । इसलिए उन्होंने अपनी गज़लों में उस खुरदरेपन को एक नई बसाहट दी, जिसमें बेईमान किस्म की झूठी शब्दाडंबरमयी आक्रामकता और शैलीगत अनाड़ीपन का नकली चेहरा उजागर हो सके । वस्तुत: यह खुरदरापन तो उन अनुभवों और विचारों का है, जिनसे बुनियादी इंसानीपन और उसके जीवन संघर्ष की पहचान हुआ करती है ।''[13] आलोचक का मंतव्य है कि कवि ने उस शिल्प को अपनाया जो बौद्धिकता के बजाए जीवन की कड़वी सच्चाई को उजागर कर सके । जहाँ भी कवि को उसमें बदलाव की जरूरत महसूस हुई, उन्होंने उसमें परिवर्तन कर दिया । गजल को लेकर किया गया बदलाव इसी का साक्ष्य है । कवि

लिखते हैं – ''यों प्रयोग के लिए मैंने कुछ गज़लें शुद्ध हिन्दी और कुछ शुद्ध उर्दू में भी कही हैं । किंतु मैंने देखा कि उनमें से ज्यादातर या तो ज्यादा साहित्यिक हो गई हैं या ज्यादा कृत्रिम । और मैं सामान्य जीवन की जिस बेचैनी को उजागर करना चाहता हूँ, वह शब्दों की चमक–दमक में कहीं खो गई है । इसलिए इन गज़लों में गज़लियत के साथ मेरी एक कोशिश यह भी रही कि हिन्दी और उर्दू के बीच ये एक सेतु का काम कर सकें । और यह इसलिए संभव लगता है कि कथ्य के स्तर इनमें मौजूदा हालात की बात कही गई है । जो दृश्य सामने है, वह दृश्य जो सामने होना चाहिए उसकी जरूरत, समाज का जूझता और टूटता हुआ रूप, राजनीति और राजनीतिज्ञों का मुल्क और समाज के साथ सुलूक, इंसान यानी अवाम की जिन्दगी, जरूरतें और उसके खतरे... इन सबको मैंने इन गज़लों में बाँधा है और इन संजीदा और भारी–भरकम मुद्दों को सहज से सहज अभिव्यक्ति और सादी से सादी भाषा में बयान करने की कोशिश की है ''[14]

भाषा के महत्त्व पर प्रो. भगवानदीन मिश्र ने लिखा है –''भाषा हमारी मानवीय पहचान है, वैयक्तिक पहचान है, सामुदायिक एवं राष्ट्रीय पहचान है तथा इससे संस्कृति की भी पहचान होती है ।''[15] दुष्यंत कुमार की भाषा में ये विशेषताएँ दिखाई पड़ती है । उनकी भाषा मानवीय सरोकार से युक्त है । यही वजह है कि कवि यथार्थ की उपेक्षा कर कोरी कल्पना को अपने सृजन-संसार में प्रश्रय नहीं देते हैं –

" आँगन में नई खिली कली,
और द्वार पर निमंत्रण की पुर्जी-सी धूप पड़ी रहती है,
बालों में खोंसकर गुलाब
घर के सामने से गुजरती हैं सुन्दरियाँ,
रंगों के साथ तैर जाते हैं आँखों में साड़ियों के
कई-कई रूप–
किंतु मुखर नहीं होती है कल्पना:
चाय का प्यारा सँभाले
एक सेर गेहूँ या चावल के लिए
सस्ते अनाज की दुकान पर कतारों में
अपने को खड़ा हुआ पाता हूँ,
अथवा
संत्रस्त और युद्धग्रस्त देशों की प्रजा की जमात में –
खड़ा हुआ सोचता हूँ –
कितने खुशकिस्मत थे पहले जमाने के कवि
अपनी परिस्थिति से बचकर आकाश ताक सकते थे ।"[16]

जब युगीन यथार्थ जनविरोधी और भयावह हो चुका हो, तब किसी भी जन चेतना सम्पन्न रचनाकार के लिए कल्पना के सुखद संसार में विचरण करना असम्भव हो

जाता है । यह बात कवि बखूबी जानते और समझते थें । कवि ने अपनी विद्रोहात्मक भाषा के द्वारा युगीन यथार्थ को सशक्त ढ़ंग से अनावृत किया है । सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विसंगति को दर्शाने में कवि की भाषा इतनी समर्थ हैं कि वे छात्र, शिक्षक, नेता, आम आदमी आदि सभी के अपने कवि बन गये । आज भी छात्र, शिक्षक, नेता, आम आदमी सभी उनकी रचनाओं की पंक्तियों को अपने वक्तव्य में उधृत करते हैं । यहाँ तक कि हिन्दी सिनेमा में भी उनके उद्धरणों का प्रयोग बहुतायत मात्रा में मिलता है । सामाजिक यथार्थ को अनावृत करने में कवि की भाषा कितनी समर्थ है, इसका प्रमाण उनकी रचनायें हैं ही । समाज की भयावह स्थिति को कवि ने अपनी भाषा द्वारा कितने सशक्त ढ़ंग से उजागर किया है, वह इन पंक्तियों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है –

" लेकिन कुछ हाथ इसी जमीन में
जिन्दगी भर खुदाई करते रहे
और कुछ सूखी पपड़ियों वाले होंठ
पानी–पानी चिल्लाते हुए
खामोश हो गए ?"[17]

सामाजिक यथार्थ को प्रत्यक्ष करने के क्रम में दुष्यंत कुमार की भाषा व्यंग्यात्मक रूप धारण कर लेती है । खासकर 'जलते हुए वन का वसंत' और 'साये में धूप' संग्रह की भाषा का अवलोकन करे तो वहाँ व्यंग्य प्रधान है ।

आपातकालीन परिस्थिति पर कवि की व्यंग्यात्मक भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

" तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए ।"[18]

यहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करनेवाली आपातकालीन व्यवस्था पर कवि का आक्रोश फूट पड़ा है । उनके लिए कविता सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर भरोसे का हथियार रही है । इस हथियार को धारदार बनाने में उनकी भाषा ने अहम भूमिका निभाई है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी भाषा में हिन्दी और उर्दू के शब्दों का जो सम्मिश्रण किया है, वह भाषागत सांस्कृतिक समन्वय का ही परिचायक है । उन्होंने लिखा भी है – "मेरी दिक्कत यह थी कि उर्दू मैं जानता नहीं और हिन्दी में मुझे वह चुहल, वह मुहावरा और बोलचाल का वह बहाव नहीं मिला, जिसके सहारे गज़ल कही जाती है या जो ज्यादातर लोगों की जबान पर चढ़ा है । मगर यही अज्ञानता मेरे लिए एक शक्ति बन गई, क्योंकि मुझे लगा कि आम आदमी एक मिली-जुली जबान बोलता है । वह न तो शुद्ध उर्दू होती है, न शुद्ध हिन्दी । इसलिए मैंने इस भाषा की तलाश शुरू की जो हिन्दी को हिन्दी और उर्दू को उर्दू दिखाई दे और आम आदमी उसे अपनी जुबान समझकर अपना सके ।"[19] इस भाषागत सांस्कृतिक समन्वय के मूल में कवि की केंद्रीय चिंता आम आदमी की

समझ की है । उनकी काव्य-भाषा के बारे में रोहिताश्व लिखते हैं –"सामाजिक सरोकारों के कारण.... आम जनता तक तरसील का अल्मिया याने सम्प्रेषण की समस्या हल करने के लिए दुष्यंत आम हिन्दुस्तानी की बोलचाल का मिजाज और भाषा प्रयोग अपनाते हैं ।"[20]

दुष्यंत कुमार ने तत्सम, तद्भव, देशज तथा अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि अनेक विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में किया है । कवि ने शब्दों का चयन सरलता, बोधगम्यता और सहजता के आधार पर किया है । तत्सम शब्दों के अंतर्गत उन्होंने हिंसक, क्रूरता,गंतव्य, विह्वल, अस्तित्व, आकांक्षा, क्षणिक, उत्तेजना, व्यक्तिगत, नेपथ्य, संस्कार, शून्य, चाक्षुष, मूल्य, प्रज्ञा, संस्कृति , निर्जन आदि का प्रयोग किया है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग कर भाषा को नया सौंदर्य और भंगिमा प्रदान की है । उन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग इस सहजता से किया है कि वे हिन्दी शब्दों में घुल–मिल गये हैं । तहजीब, इनायत, अलाव, गम, करिश्मा, खामोश, जुनून, हरगिज, दरख्त, खुदा, दहशत, मयस्सर, चिराग, ख्याल, बहार, सहर, आफताब आदि अरबी-फारसी की शब्दावली उनके काव्य संसार में दिखाई पड़ती है । दुष्यंत कुमार ने कई उर्दू शब्दों के तत्सम रूपों को खत्म कर, उनका प्रयोग हिन्दी के प्रचलित रूपों में किया जैसे– वज्न को वजन, शह्र को शहर आदि । ऐसा करके दुष्यंत कुमार ने भाषा को सहज

और आमजन के सन्निकट लाने का प्रयास किया है जो उनका मूल अभिप्रेत है । दुष्यंत कुमार ने अपनी भाषा में छोटे-छोटे शब्दों द्वारा विविध मन:स्थितियों को सुन्दर ढ़ंग से उजागर किया है –

" कितना स्वीकार्य और सहज हो गया है परिवेश
कि सत्य
चाहे नंगा होकर आए, दिखता नहीं है ।"[21]

व्यक्ति के समक्ष सत्य नंगा होकर रहता है फिर भी व्यक्ति अपनी अंध मानसिकता के कारण सत्य को अनदेखा कर देता है । मनुष्य की निरपेक्ष दृष्टि को कवि ने यहाँ शब्दों से प्रत्यक्ष कर दिया है ।

कवि ने हमेशा इस बात का ध्यान रखा है कि भारी-भरकम शब्दों के बोझ से भाव न दब जाये । उनकी कई कविताएँ ऐसी है जिसके कई प्रारूप (draft) मिलते हैं । उदाहरण के तौर पर 'प्रथम प्रारूप' और 'अंतिम प्रारूप' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ है । प्रथम प्रारूप में कवि लिखते हैं –

" जगती का प्यासा कण-कण है
प्यासा मानव का जीवन है
तुम मधु वाणी से कवि अपनी
शांति सुधा-रस पान करा दो"[22]

वहीं 'अंतिम प्रारूप' कविता में कवि भाषा को गहन स्तर पर भावानुकूल प्रयुक्त

करते हुए दिखते हैं –

" तृषावंत जग का कण-कण है
तृषावंत मानव जीवन है
कवि तुम अपनी मधु वीणा से
शांति सुधा-रस पान करा दो "[23]

जहाँ 'प्रथम प्रारूप' में कथ्य सतह पर ही रह गया है, वहीं 'अंतिम प्रारूप' में कथ्य की गहनता उभरकर आयी है । शब्दों के सार्थक और उचित चयन से कवि की तीव्र संवेदना बखूबी जाहिर हुई है ।

समग्रत: कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिए ऐसी भाषा का चुनाव करते हैं जो सहज, सरल और आमजन के निकट हो । अपनी भाषा द्वारा उन्होंने हिन्दी और उर्दू की भाषायी साहित्यिक विरासत को साझा करने की कोशिश की है और उसमें वे सफल भी हुए हैं । सहज भाषिक बुनावट के कारण कोई भी अध्येता उनकी कविताओं की ओर आकर्षित हो जाता है । उर्दू की गज़ल विधा को आधार बनाकर हिन्दी में जिस सहजता और कलात्मकता से वे सामाजिक विद्रूपता और विसंगति को प्रस्तुत कर सके, वह उनकी भाषागत कुशलता का प्रमाण है ।

2. बिम्ब

बिम्ब शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है । इसके लिए अंग्रेजी में 'इमेज' शब्द का प्रयोग किया गया है । आधुनिक युग की जटिलता को व्यक्त

करने में बिम्ब प्रभावी अभिव्यंजन पद्धति है । बिम्ब किसी वस्तु की मानसिक प्रतिकृति है । काव्य-अंकन में जब प्रस्तुत और अप्रस्तुत का भेद मिट जाता है, तब बिम्ब की सृष्टि होती है । बिम्ब के लिए हिन्दी में प्रतिच्छवि, प्रतिच्छाया, प्रत्यंकन, चित्र भाषा आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । काव्य–बिम्ब में कवि अपने भाव और विचारों का चित्रात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं अर्थात् काव्य में बिम्ब–विधान के द्वारा चित्रात्मकता की सृष्टि होती है । केदारनाथ सिंह ने काव्य सर्जना में बिम्ब को अधिक महत्त्व दिया है । वे बिम्ब को परिभाषित करते हुए लिखते हैं –'' 'बिम्ब वह शब्द-चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐंद्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है ।''[24] केदारनाथ सिंह के कहने का आशय यही है कि बिम्ब का निर्माण कवि की सर्जनात्मक कल्पना से होता है । कवि जब किसी वस्तु से गहन स्तर तक सम्बद्ध हो जाता है, तब बिम्ब की निर्मिति होती है ।

कांता पंत ने लिखा है – ''बिम्ब सादृश्य पर आधारित वह कल्पित विधान है जिसके द्वारा काव्यगत अर्थ हमारे सामने रूपायित हो जाता है । इसके लिए हम साम्य के आधार पर कोई ऐसा भाषिक प्रयोग करते हैं जो भाव को हमारे सामने इस रूप में चित्रित कर सके, कि उसका हम उसी रूप में अनुभव कर सकें, जैसे भौतिक जगत के किसी तत्त्व का किसी भी इंद्रिय के द्वारा अनुभव करते हैं ।''[25] कहने का अर्थ यही है कि जो शब्द इंद्रियानुभव भाव चित्र उकेर दे, वही

बिम्ब है । बिम्ब सादृश्य के आधार पर किसी वस्तु या गुण की प्रतिछवि है । बिम्ब निर्माण में आलोचक ने कल्पना के महत्त्व को भी स्वीकारा है ।

एकांत श्रीवास्तव का मानना है कि – "बिम्ब और प्रतीक बहुत दूर तक कविता की भाषा को एक परिपक्वता और काव्यात्मकता प्रदान करते हैं । .....बिम्ब हमारे दैनन्दिन संसार और प्रकृति को कविता में मूर्त और सजीव करते हैं ।"[26] अर्थात् बिम्ब काव्य-शिल्प का वह तत्व है जो रचना में वर्णित कथ्य को जीवंत बना देता है । दिनकर तो बिम्ब को 'कविता का एक मात्र शाश्वत तत्त्व'[27] मानते हैं ।

बिम्ब रचनाकार की कुशलता का प्रमाण है । रचनाकार अपने कथ्य को शब्द और भाषा के सहारे ऐसे प्रकट करता है कि पाठक के सामने रचनाकार का कथ्य चित्र रूप में निर्मित हो जाता है । पाश्चात्य विचारक ड्राइडन के अनुसार- "बिम्ब विधान कविता की उत्कृष्टता नहीं, उसका प्राण तत्व है ।"[28]

अत: यह कहा जा सकता है कि रचनाकार की कुशलता अपने भाव एवं विचारों को पाठक तक पहुँचाने में है और यह कार्य वह उत्कृष्ट बिम्ब-विधान द्वारा करता है । बिम्ब एक प्रकार का शब्द–चित्र है जो कवि के ऐंद्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होती है । बिम्ब-विधान के द्वारा भाव में मूर्तता आती है । बिम्ब सर्जक के भाव और विचार को प्रत्यक्ष करता है । यह भाव एवं विचारों की

कलात्मक पुनर्सृष्टि है क्योंकि यह रचनाकार की संवेदना, उसकी कल्पना, उसका काव्यार्थ सभी का संतुलित समन्वय है ।

दुष्यंत कुमार का बिम्ब-विधान उत्कृष्ट है । बिम्बों के प्रयोग से उनके शिल्प में ताजगी आयी है । उनके काव्य जगत में विविध प्रकार के बिम्ब दिखायी देते हैं । दृश्य बिम्ब, स्पर्श बिम्ब, रस बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, वैज्ञानिक बिम्ब, धार्मिक बिम्ब, पौराणिक बिम्ब का प्रयोग उनकी कविताओं में हुआ है । दुष्यंत कुमार की कविताओं में प्राकृतिक बिम्ब का प्रयोग अत्यंत आकर्षक ढ़ंग से हुआ है । प्राकृतिक बिम्ब के अंतर्गत कवि अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से सामग्री संकलित करता है । छायावादी कवियों में पंत ने सर्वाधिक बिम्ब प्रकृति से लिए हैं । दुष्यंत कुमार के काव्य में प्राकृतिक बिंबों की भरमार है । उनके काव्य-संग्रहों - 'सूर्य का स्वागत', 'जलते हुए वन का वसंत', 'साये में धूप' के नामकरण प्राकृतिक बिम्ब का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । 'सूर्य का स्वागत' काव्य-संग्रह की कविता 'सूर्य का स्वागत' में कवि प्राकृतिक बिम्ब की रचना अत्यंत रमणीयता के साथ करते हैं –

" आँगन में काई है,
दीवारें चिकनी हैं , काली हैं,
धूप से चढ़ा नहीं जाता है,"[29]

काई और सीलन से भरी दिवार पर चढ़ पाने में असमर्थ धूप का जो बिम्ब कवि ने

उकेरा है, वह नवीन तो है ही, आकर्षक भी है । समुद्र, धूप, शाम, सूर्य, वर्षा, इंद्रधनुष, चाँदनी, धुँआ, हवा आदि बिम्बों का कवि ने बार-बार प्रयोग किया है । उनकी रचनाओं में धूप और सूर्य अधिक बार आये हैं । उनकी 'स्वस्तिक क्षण' कविता में धूप का जो बिम्ब खींचा गया है, वह अनूठा है --

" आँगन में पड़ी हुई पायल–सी धूप !
छूम छनन छन ! "[30]

'साये में धूप' संग्रह में धूप से संबंधित कई बिम्ब दिखाई पड़ते हैं । संग्रह के नामकरण में ही बिम्ब का सुन्दर प्रयोग दिखता है । इसके अलावा कुछेक निम्नलिखित उदाहरण है –

1. " यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है ,
चलो यहाँ से चलें और उम्र–भर के लिए ।"[31]
2. " कहीं पे धूप की चादर बिछा के बैठ गए,
कहीं पे शाम सिरहाने लगा के बैठ गए ।"[32]
3. " धूप ये अठखेलियाँ हर रोज करती है ,
एक छाया सीढ़ियाँ चढ़ती-उतरती है ।"[33]

धूप के अतिरिक्त अन्य प्रकृति रूपों के प्रभावी बिम्ब देखिए–

1. " खरगोश बन के दौड़ रहे हैं तमाम ख्वाब ,
फिरता है चाँदनी में कोई सच डरा-डरा ।"[34]

2. " एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है ।"[35]

3. " निर्वचन मैदान में लेटी हुई है जो नदी ,
पत्थरों से, ओट में जा-जाके बतियाती तो है ।"[36]

जब कवि अपने कथ्य को मूर्त करने के लिए पौराणिक चरित्रों का सहारा लेता है, तब वहाँ पौराणिक बिम्ब की सृष्टि होती है । दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में पौराणिक बिम्बों के माध्यम से आधुनिक जीवन-सन्दर्भो को प्रतिपादित किया है । कवि ने अधिकांश पौराणिक बिम्ब महाभारत के पौराणिक प्रसंग से लिये हैं । कवि यहाँ पौराणिक पात्र और घटनाओं के द्वारा अपने गम्भीर भाव और विचारणाओं को मूर्त करते हैं ।'दृष्टांत','दिग्विजय का अश्व','कवि- धर्म','कुंठा', 'सत्यान्वेषी' आदि कविताओं में पौराणिक बिम्ब का सफल प्रयोग देख सकते हैं ।'कुंठा' शीर्षक कविता में पौराणिक बिम्ब की सृष्टि कवि आकर्षक तरीके से करते हैं –

" गर्भवती है
मेरी कुंठा-क्वारी कुंती !
बाहर आने दूँ
तो लोक-लाज मर्यादा
भीतर रहने दूँ
तो घुटन, सहन से ज्यादा,

मेरा यह व्यक्तित्व

सिमटने पर आमादा ।''[37]

यहाँ अभिव्यक्ति की छटपटाहट को पौराणिक बिम्ब द्वारा कवि ने मूर्तिमान कर दिया है ।

दृश्यात्मकता प्रत्येक बिम्ब का मुख्य लक्षण है । सर्जक के भाव और विचारों की जो प्रतिछवि पाठक के मानस में गठित होती है, उसकी मुख्य वजह यही दृश्यात्मकता है । इसे ऐंद्रिय बिम्ब भी कहा जाता है । दृश्य बिम्ब के दो रूप माने गये हैं – स्थिर और गतिशील । स्थिर बिम्ब में केवल चित्र का बोध होता हैं जबकि गतिशील बिम्ब गतिशील क्रिया-व्यापार का बोध कराते हैं । दुष्यंत कुमार की कविताओं में कई दृश्य बिम्ब दिखाई पड़ते हैं । स्थिर बिम्ब का यह प्रस्तुत उदाहरण देखे–

'' बंजर धरती, झुलसे पौधे, बिखरे काँटे, तेज हवा,

हमने घर बैठे-बैठे ही सारा मंजर देख लिया ।''[38]

सूखे की स्थिति को कवि ने यहाँ प्रत्यक्ष कर दिया है । उनकी 'दिग्विजय का अश्व' कविता में भी स्थिर बिम्ब का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है –

'' अस्तबल में बँधा यह निर्वाक प्राणी !

उस 'चमेली' गाय के बछड़े सरीखा

आज बंधनहीन होकर

यहाँ कितना रम गया है !

यह कि जैसे यहीं जन्मा हो, पला हो ।''[39]

गतिशील बिम्ब के कई सुन्दर उदाहरण उनकी रचनाओं में मिल जाते हैं । तेज रफ्तार जिन्दगी का जो बिम्ब कवि ने उकेरा है, वह कवि की सामाजिक चिंता को प्रमाणित करती है । आपाधापी भरी जिन्दगी का यह बिम्ब प्रस्तुत है –

'' पाँच बजे टूट पड़ती

एक भीड़ अपार

अनगिन लोग-कारें बसें बाइसिकलें

राजमार्गों पर उतरती दौड़ती हैं ''[40]

वैज्ञानिक बिम्ब में रचनाकार वैज्ञानिक उपादानों के द्वारा अपने अभिप्रेत को चाक्षुष बना देता है । कवि दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में वैज्ञानिक दुनिया के कई बिम्बों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । गैस, बिजली का स्विच, मशीन, लैम्प पोस्ट की चिमनियाँ आदि इसके प्रमाण है । निम्नलिखित उदाहरण में 'गैस के गुब्बारों ' का बिम्बात्मक अंकन द्रष्टव्य है –

'' गैस के गुब्बारों-से

जिन्दगी के ख्वाब जहाँ उड़ते हैं

हवाओं के बच्चे जिन्हें

छूकर फोड़ देते हैं ''[41]

'प्रेरणा के लिए' कविता में कवि वैज्ञानिक बिम्ब के माध्यम से मानवीय प्रकृति को रूपायित करते हैं –

" जैसे बिजली का स्विच दबे
औ' मशीन चल निकले
वैसे ही मैं था बस ,
मूक.... विवश.....
कर्मशील इच्छा के सम्मुख
परिचालक थे जिनके तुम ।"[42]

इसी तरह सामाजिक क्रांति को उभारता हुआ यह वैज्ञानिक बिम्ब देखें –

" आटा पीसने की चक्कियाँ
जनता के सम्मिलित नारों की-सी आवाज में
गड़गड़ाने लगी हैं,"[43]

दुष्यंत कुमार ने ध्वनि बिम्ब का प्रयोग अपनी कविताओं में बहुलता से किया है । ध्वनि बिम्ब गम्भीर भावों के सहज प्रकाशन में पूर्ण समर्थ है । ध्वनि बिम्ब की एक विशेषता यह है कि इसमें संक्षेप में ही रचनाकार पूरी कलात्मकता के साथ अपने अभीष्टार्थ को सहृदय तक पहुँचा देता है । कवि दुष्यंत कुमार की कविताओं में ध्वनि बिम्ब का सार्थक प्रयोग हुआ है । 'साड़ी के पल्लू-सी सरसराहट ', 'मौत की धड़धड़ाहत', 'चिड़िया के पंख की फड़फड़ाहट' आदि को

कवि गहनता से सुनते हैं और उसे कविताओं में प्रत्यक्ष कर देते हैं । दुष्यंत कुमार के ध्वनि बिम्बों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । ध्वनि बिम्ब का निम्न उदाहरण प्रस्तुत है –

" मनुष्यों जैसी
पक्षियों की चीखें और कराहें गूँज रही हैं ,
टीन के कनस्तरों की बस्ती में
हृदय की शक्ल जैसी अँगीठियों से
धुआँ निकलने लगा है,
आटा पीसने की चक्कियाँ
जनता के सम्मिलित नारों की-सी आवाज में
गड़गड़ाने लगी हैं ,"[44]

दुष्यंत कुमार की रचनाओं में धार्मिक जगत से भी कई बिम्ब आए हैं । निम्न शे'र इसका प्रमाण है –

1. " रस्मों-रिवाज के तहत कुछ लोग मुस्करा दिए ,
दिन-रात एक बात पर क्या सोचकर रहा करूँ ।"[45]

2. " शीशे चटख गए तो आज अक्स अजनबी हुए
मांगू कहाँ मनौतियाँ जाकर कहाँ दुआ करूँ । "[46]

3." ये लोग होमो-हवन में यकीन रखते हैं ,
चलो यहाँ से चलें, हाथ जल न जाए कहीं ।"[47]

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि कवि दुष्यंत कुमार की बिम्ब-योजना अत्यंत आकर्षक है । बिम्ब के माध्यम से कवि अपने भाव एवं विचारों को मूर्त करने में सक्षम हुए हैं । उन्होंने नये और पुराने दोनों तरह के बिम्बों को अपनी कविताओं में प्रयुक्त किया है । उनके बिम्ब सार्थक, प्रभावशाली और सबसे बढ़कर सम्प्रेषणीय है । वह पाठकों के मन-मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव डालने वाला है । बिम्बों का प्रयोग कर कवि ने अपनी भावाभिव्यक्ति को आकर्षक और रमणीय बना दिया है । कवि ने बिम्बों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को प्रत्यक्ष कर दिया है । उनकी कविताओं में प्रयुक्त बिम्ब आधुनिक युग की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विसंगति और विडंबना को रूपायित करने में समर्थ हुए हैं । सामान्यजन के जीवन की त्रासदी बिम्बों के द्वारा जीवंत हो उठी है । उनकी बिम्ब-योजना सहज और स्वाभाविक है, उसमें दुरूहता और बनावटीपन नहीं है ।

3. प्रतीक-योजना

प्रतीक के लिए अंग्रेज़ी में 'सिम्बल' शब्द का प्रयोग मिलता है । प्रतीक भी काव्य–सृजनात्मक प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण तत्व है । प्रतीक सादृश्य पर आधारित होता है । प्रतीक सफल भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं ।

भारतीय साहित्य कोश में प्रतीक के संबंध में लिखा है –"यह अंग्रेजी के 'सिम्बल' का पर्याय है । इसका प्रयोग किसी मूर्त, अमूर्त और गोचर

तथा इंद्रियातीत विषय का किसी अन्य मूर्त एवं इंद्रियगोचर वस्तु द्वारा प्रतिविधान किए जाने के अर्थ में होता है । अत: प्रतीक योजना में सामान्यत: चार तत्वों की स्थिति होती है- परोक्ष एवं अप्रस्तुत कथन की शैली ; अतींद्रिय विषय की इंद्रियगोचर व्याख्या ; प्रस्तुत से भिन्न सूक्ष्मतर अर्थ की व्यंजना; प्रस्तुत के कथन के स्थान पर केवल अप्रस्तुत का कथन ।''[48]

रामचंद्र तिवारी के अनुसार –'' 'प्रतीक का अर्थ होता है किसी एक वस्तु के प्रतिनिधि या व्यंजक के रूप में दूसरी वस्तु को प्रस्तुत करना ।''[49]

हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल से ही काव्य में प्रतीकों का प्रयोग मिलता है । मध्यकाल के कवि कबीर और जायसी के काव्य में इसकी प्रचुरता देखी जा सकती है । कुछ प्रतीक तो विशेष रूप से हमारे रोजमर्रा के जीवन के अंग बन गये हैं, जैसे वीरता के लिए शेर, चालाकी के लिए लोमड़ी, आत्मा के लिए हंस, कायर के लिए गीदड़ आदि । प्रतीकों की योजना अर्थ-सन्दर्भों को व्यंजित करने के लिए किया जाता है । प्रतीकों के प्रयोग से काव्य-भाषा की व्यंजना शक्ति समृद्ध होती है । कवि सूक्ष्म और गहन अनुभूतियों को प्रतीकों के द्वारा सहजता से अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है । प्रतीक किसी वस्तु का निश्चित और सर्वस्वीकृत संकेत है । जब रचनाकार अपनी बातों को स्पष्टत: नहीं कह पाता है, तब वह प्रतीकों के माध्यम से अपने विचारों को प्रकट करता है ।

प्रतीकों का प्रयोग दुष्यंत कुमार के रचना जगत में बहुतायत मात्रा में

हुआ है । उन्होंने विभिन्न प्रतीकों का सार्थक प्रयोग कर अपनी सृजनात्मकता को नई अर्थवत्ता दी है । दुष्यंत कुमार मानवीय मूल्यों के कवि है । समकालीन सामाजिक यथार्थ को निरूपित करने के लिए कवि पौराणिक प्रतीकों का सहारा लेते हैं । पौराणिक प्रतीकों में कृष्ण, अर्जुन, भीम, सहदेव, धर्मराज, नकुल, अभिमन्यु, कर्ण, कुंती, चक्रव्युह, युद्ध–स्थल, कौरव–सेना प्रमुख है । 'दिग्विजय का अश्व' शीर्षक कविता उनकी प्रतीकात्मक कविता है । इसमें कवि पौराणिक प्रसंग को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत कर अपनी विद्रोही चेतना को अभिव्यक्त करते हैं । कवि ने इस कविता के माध्यम से साम्राज्यवादी ताकतों के प्रति अपनी विद्रोही चेतना को व्यक्त किया है । इस कविता में कृष्ण, अर्जुन, भीम, सहदेव, धर्मराज, नकुल साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतीक है । उनका अश्व और हाथी शक्तिशाली साधनों का प्रतीक है । 'फसल' आम-जनता, 'निर्वाक प्राणी' लोकतंत्रीय संविधान का, फाड़वे और लाठी जनता के संघर्ष का प्रतीक है । महाभारत के पौराणिक पात्रों के माध्यम से कवि सत्ता वर्ग के दबदबे, उनके शक्तिभिमान को व्यंजित करते हैं । 'दिग्विजय का अश्व' शीर्षक कविता में निहित प्रतीकों की प्रशंसा करते हुए प्रभाकर क्षोत्रिय लिखते हैं – " 'दिग्विजय का अश्व' जैसी कविताओं में वे पारम्परिक प्रसंग को प्रतीक में बदलकर अपनी विद्रोही चेतना को क्रीड़ा-भाव के निराले अन्दाज में रचते हैं ।"[50]

प्रभाकर क्षोत्रिय कवि दुष्यंत कुमार के प्रतीक योजना में उनके चरित्र

के 'तबीयत से पत्थर उछालने' वाले तेवर को देखते हैं । आलोचक का मानना है कि कवि के प्रतीक सन्दर्भानुकूल ही नहीं बल्कि सारगर्भित भी होते हैं ।

इसी तरह 'सत्यान्वेषी' शीर्षक कविता में कवि कृष्ण को दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति के प्रतीक के रूप में चित्रित करते हैं, जो अपने मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करने के लिए पूर्णरूपेण सचेष्ट है –

" सुनो, कृष्ण हूँ मैं,
भूल से साथियों ने
इधर फेंक दी थी जो गेंद , अन
उसे लेने आया हूँ
(आया था
आऊँगा)
लेकर ही जाऊँगा !"[51]

इसके अतिरिक्त इस कविता में अजगर प्रतिरोधात्मक शक्ति का, कालियादाह युग का और गेंद सत्य का प्रतीक है । उनकी 'कुंठा' शीर्षक कविता में कुंती कुंठित अभिव्यक्ति का प्रतीक है । कवि की अभिव्यक्ति क्वारी कुंती की तरह गर्भावस्था की त्रासदायक पीड़ा को झेल रही है–

" प्रसव-काल है!
सघन वेदना !

मन के चट्टानों कुछ खिसको
राह बना लूँ ;
ओ स्वर-निर्झर बहो कि तुममें
गर्भवती अपनी कुंठा का कर्ण बहा लूँ,
मुझको इससे मोह नहीं है
इसे विदा दूँ।''[52]

उनकी रचनाओं में अभिमन्यु संघर्षशील व्यक्तित्व का, क्वारी कुंती व्यक्ति मन की कुंठा का, क्वारी कुंती का पुत्र कर्ण प्रतिशोधात्मक मन का, कौरव-दल अन्यायी शक्तियों का प्रतीक है । इन प्रतीकों के माध्यम से कवि ने जीवन-सत्य को अनावृत किया है । ये प्रतीक आधुनिक जीवन-सन्दर्भो को रूपायित करने में पूर्ण समर्थ हुए हैं ।

कवि दुष्यंत कुमार ने अपने कथ्य को सारगर्भित रूप में अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति और प्राकृतिक उपादानों से प्रतीक ग्रहण किया है । इनकी कविताओं में प्राकृतिक प्रतीकों की भरमार है । इन प्रतीकों के द्वारा कवि अपनी व्यंजना शक्ति को सशक्त बनाते हैं । कवि ने छोटी–छोटी मन:स्थितियों और संवेदनाओं को प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा सुन्दर तरीके से व्यक्त किया है । अपनी कविताओं में नदी, तालाब, पेड़–पौधे, आकाश, फूल, साँप, मैना आदि प्राकृतिक उपादानों को कवि ने प्रतीक के तौर पर प्रयुक्त किया है । इनके माध्यम से कवि ने

भ्रष्ट राजनीति और लोकतंत्र की विसंगतियों को सशक्त रूप में अनावृत्त किया है। 'साँप आस्तीनों में' शीर्षक कविता के भाग–1 में कवि ने प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा राजनीतिक विसंगतियों को सुन्दर तरीके से उजागर किया है। इस कविता में प्रतीकों का उत्कृष्ट प्रयोग देखा जा सकता है –

" हमने पाले साँप आस्तीनों में
दूध पिलाया
खुले हुए आँगन में छोड़ा
पक्का फर्श उखाड़
बनाए उसके लिए रास्ते
उसको अपना माना
पर ये साँप रहे
उनके दाँतों से विष न गया
हमने तोड़े नहीं
इन्होंने उन्हें प्रयोग किया "[53]

यहाँ साँप भ्रष्ट और स्वार्थी राजनेताओं का, खुला हुआ आँगन भारत देश का, पक्का फर्श लोकतंत्रीय संविधान का, विष नेताओं के छल-कपट का प्रतीक है। इस कविता में कवि ने प्रतीकात्मक रूप में राजनीतिक विसंगतियों को वृहत्तर स्तर पर प्रकट किया है। प्राकृतिक प्रतीक का एक और उदाहरण प्रस्तुत है–

" जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए "[54]

प्रस्तुत शे'र में गुलमोहर भारत देश का प्रतीक है । यहाँ प्रतीक का प्रयोग कर कवि देश के प्रति अपने अगाध प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं । इसी तरह "अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,/ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं "[55] में तालाब लोकतंत्रीय व्यवस्था का, पानी नीतियों का, कँवल का फूल व्यवस्था के तले दबे हुए सामान्यजन का प्रतीक है ।

दुष्यंत कुमार के प्रथम काव्य-संग्रह 'सूर्य का स्वागत' में संग्रहित 'सूर्य का स्वागत' शीर्षक कविता में सूर्य आस्था का, काई घोर अभाव का, काली दिवारें निराशा का और धूप आशा का प्रतीक है –

" आँगन में काई है ,
दीवारें चिकनी हैं, काली हैं,
धूप से चढ़ा नहीं जाता है,"[56]

इसके अलावा उनकी कविताओं में झील, हरसिंगार, परिन्दे, बरगद, मैना आदि प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में राजनीतिक प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग किया है । जहाँ वे अपना गहरा आक्रोश प्रकट करते हैं, वहाँ प्रतीकों के प्रयोग से आक्रोश तिलमिला देनेवाले व्यंग्य में परिवर्तित हो जाता है । उनकी

कविताओं का बहुलांश राजनीतिक जीवन की विसंगतियों, लोकतंत्र के जनविरोधी चरित्र को व्यापकता से उद्‌घाटित करती है । उदाहरण के लिए निम्न शे'र देखिये –

" जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में ,
हम नहीं है आदमी, हम झुनझुने है ।"[57]

इस शे'र में दुष्यंत कुमार ने 'झुनझुना' को जनतंत्र में सामान्य जन के 'अस्तित्वहीन व्यक्तित्व' का प्रतीक बनाया है । इस प्रतीक के माध्यम से दुष्यंत कुमार ने जनतांत्रिक व्यवस्था की सच्चाई को तीखे तेवर के साथ सामने लाया है । आपातकालीन तानाशाही को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने राजनीतिक प्रतीकों का सहारा लिया है –

" एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो ,
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है ।"[58]

यहाँ अंधेरी कोठरी देश में व्याप्त अव्यवस्था और अनाचार का तथा रोशनदान जन–समर्पित व्यक्तित्व स्व. जयप्रकाश नारायण का प्रतीक है ।

निष्कर्षत: दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में प्रतीकों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । उनके प्रतीक उनकी अभिव्यंजना को नया आयाम देते हैं । प्रतीकों के प्रयोग से उनकी कविताओं में रोचकता की सृष्टि हुई है ।

4. अलंकार

अलंकार का शाब्दिक अर्थ है–'आभूषण' । सामान्यत: विविध प्रकार के आभूषणों के प्रयोग से शरीर का सौंदर्यवर्धन किया जाता है । काव्य में अलंकारों का प्रयोगकर काव्य की शोभा और प्रभाव को बढ़ाने की चेष्टा की जाती है । अलंकार काव्य–शिल्प का प्रमुख तत्व न होकर भी उपयोगी तत्व अवश्य है । अलंकार के स्वरूप के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है – "कविता में भाषा की सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है । वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूप-रंग या गुण की भावना को उसी प्रकार के और रूप-रंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्मशाली और-और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है । कभी–कभी बात को घुमा–फिराकर कहना पड़ता है । इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढ़ंग अलंकार कहलाते हैं ।"[59] शुक्ल जी मानते हैं कि अलंकार काव्यार्थ को नवीन रूप में विभूषित कर उसका उत्कर्ष बढ़ाता है । अलंकारों के प्रयोग से कथ्य में नवीन सौंदर्य की सृष्टि हो जाती है । अलंकार के संबंध में कविवर पंत के विचारों को जानना आवश्यक लगता है – "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं । भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे

वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति है, पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं ।"[60] पंतजी के कथन का आशय यही है कि अलंकार काव्य के लिए अनिवार्य तत्व न होकर भी काव्य की या कहे हुए कथन की शोभा बढ़ाने के लिए जरूरी है । अलंकार भावाभिव्यक्ति को विशेष बना देता है । अलंकार केवल सौंदर्य ही नहीं बढ़ाता बल्कि विविध भावों और स्थितियों को जीवंत भी कर देता है । अगर अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया जाए तो अलंकार से सुसज्जित विचार अपना प्रभाव बढ़ाने में समर्थ होती है । वही अगर अलंकारों को जबरन ठूस दिया जाए तो विचार और प्रभाव, दोनों खत्म हो जाता है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में विविध अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । अलंकारों के प्रयोग से उनकी भाषा की गरिमा में वृद्धि हुई है । वे अलंकार द्वारा भावों, विचारों एवं घटनाओं को प्रत्यक्ष और आकर्षक बनाते हैं । कविता को आकर्षक बनाने के लिए कवि उसका गैरजरूरी प्रयोग नहीं करते हैं । वे अलंकारों के द्वारा भाव को चित्रमयी बनाने में सफल हुए हैं । यही वजह है कि सप्तकीय परम्परा और शैलीगत प्रयोग से पृथक होकर भी वे पाठकों के हृदय में स्थायी प्रभाव डालने में समर्थ हुए हैं । उनके काव्य-संसार में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, मानवीकरण, अन्योक्ति, पुनरूक्तिप्रकाश आदि अलंकारों का सुन्दर और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में उपमा अलंकारों की प्रचुरता है । उपमा अलंकार का प्रयोग कर कवि ने भाव को गम्भीर और आकर्षक बना दिया है । सादृश्य के माध्यम से कवि एक विराट् भाव एवं विचार को प्रभावशाली तरीके से नियोजित कर देते हैं । कवि ने सामान्यजन के जीवन की बेबसी को उपमा अलंकार के प्रयोग से मार्मिक बना दिया है –

" उत्साहवश या विवश करके
वहाँ लाए गए थे
वो लोग थककर बैठ जाएँगे
फिर किसी मनहूस दल के चिह्न-सी जीवन–पताका
झुकेगी या थरथराकर टूट जाएगी ।"[61]

कवि ने उपमा अलंकारों के द्वारा उक्ति में चमत्कार ही नहीं उत्पन्न किया अपितु जीवन-संघर्ष के विविध आयामों को भी स्पष्ट किया है –

" हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए ।"[62]

उपर्युक्त शे'र में व्यथा की पराकाष्ठा को उपमा अलंकार के प्रयोग से कवि ने जीवंत, मार्मिक और प्रभावशाली बना दिया है । कवि ने कतिपय नये उपमानों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है । जैसे –

" तू किसी रेल-सी गुजरती है,

मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ।''[63]

यहाँ ' रेल-सी' और 'पुल-सा' परम्परागत उपमानों से भिन्न नये उपमान है जिसका प्रथम प्रयोग दुष्यंत कुमार ने किया है। 'कवि-धर्म ', 'उपक्रम' जैसी कविताओं में उपमा अलंकारों का बहुत ही सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है। 'भूखे बालकों-सी बिलखती मर्यादाएँ ', 'साड़ी के पल्लू-सी सरसराहट' ,'जीने की आशाएँ चिकनी मछलियों–सी' 'आँखों में एक विचित्र मुलायम-सी हिंसक क्रूरता का भाव', 'लिपे–पुते आँगन–सी धरती पड़ी है', 'बदहवास लड़की-सी गरम-गरम साँसे', 'कुंठा / रेशम के कीड़ों-सी' आदि उपमा अलंकार के बेहतरीन उदाहरण है।

अनुप्रास अलंकार का प्रयोग दुष्यंत कुमार की कविताओं में बहुत अधिक मात्रा में हुआ है। अनुप्रास अलंकार में वर्णो की आवृत्ति बार-बार होती है। वर्णो की समानता का मतलब है व्यंजन वर्णो की समानता। इसमें एक अर्थ वाले पदों या वाक्यों की भी एक या एक से अधिक बार आवृत्ति होती है। दुष्यंत कुमार ने अनुप्रास के सभी रूपों का सुन्दर प्रयोग किया है। 'गहरी और गहरी अगर होती गई प्राण','पल-भर में जनता पर जादू कर जाता है','ओसारों में बैठे हुए बूढ़े बर्राते हैं','यह सोचे बिना कि कार्तिक में कितनी ठंड होती है','लहरों पर लिखे हैं किलोलों के दृश्य', 'पल-भर में जनता पर जादू कर जाता है', 'किसी भी कौम की तारीख के उजाले में', 'मेरे गीतों में कोई छिप-छिप गाता','खामोशी शोर

से सुनते थे कि घबराती,/खामोशी शोर मचाने लगे, ये तो हद है ।' आदि कतिपय उदाहरण है जिनमें अनुप्रास अलंकार का भावप्रवण प्रयोग देखने को मिलता है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में विरोधाभास अलंकार की सुन्दर नियोजना की है । विरोधाभास अलंकार वहाँ होता है, जहाँ दो वस्तुओं में वास्तविक विरोध न होते हुए भी, विरोध का आभास होता है । विरोधाभास अलंकार के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–

1)'' मुझे स्वीकार हैं
वे हवाएँ भी
जो तुम्हें शीत देती
और मुझे जलाती हैं ।''[64]

2)'' मौन था मैं किंतु मैंने
मूक भाषा में कहा था ''[65]

3)'' जो आदमी मर चुके थे, मौजूद हैं इस सभा में ''[66]

यहाँ हवा का एक साथ ताप और शीतलता प्रदान करना, कवि का मौन होकर भी कहना और दिवंगत हुए लोगों का सभा में मौजूद रहना, विरोध का आभास करा रहा है ।

दुष्यंत कुमार की कविताओं में उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है । इसके माध्यम से कवि की दार्शनिकता स्पष्ट हुई है । जीवन में सुख की

गैरमौजूदगी को कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा बड़े ही आकर्षक ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है । प्रस्तुत उदाहरण देखें –

" सुख कहाँ
यों भाप बन-बनकर चुका, रीता
भटकता, छानता आकाश ,"[67]

छायावादी कवियों ने मानवीकरण अलंकार की उद्‌भावना की और अपने काव्य में उनका प्रचुर प्रयोग किया । कवि दुष्यंत कुमार के यहाँ मानवीकरण अलंकार का व्यापक प्रयोग देखने को मिलता है । उनकी 'सूर्य का स्वागत' संग्रह की कविताओं में मानवीकरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग दिखता है । 'सूर्य का स्वागत' शीर्षक कविता में कवि सूर्य को मानवीय रूप प्रदान करते हुए अपने अभद्र सत्कार के लिए क्षमा माँगते हैं । कवि बड़ी आत्मीयता के साथ सूर्य को 'भाई' सम्बोधित करते हुए कहते हैं –

" ओ भाई सूरज ! मैं क्या करूँ ?
मेरा नसीबा ही ऐसा है ! "[68]

'ईश्वर की सूली' कविता में कवि 'प्रजातंत्र ' को शिशु रूप में तो 'साँझ : एक विदा दृश्य' में कवि पर्वत को पिता, संध्या को दु:खी माँ और हवा को एक शोख वय वाली लड़की के रूप में चित्रित करते हैं ।

सामाजिक यथार्थ के कवि अपने आक्रोश को अभिव्यक्त करने हेतु

अन्योक्ति अलंकार का सार्थक प्रयोग करते हैं । इस अलंकार का प्रयोग बहुधा राजनीतिक सन्दर्भो में हुआ है । अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग कर कवि ने अपने व्यंग्य को धारदार और प्रहारक बनाया है ।

" एक गुड़िया की कई कठपुतली में जान है ,
आज शायर, ये तमाशा देखकर हैरान है।"[69]

यहाँ तत्कालीन शासक की ओर इशारा किया गया है । इसी तरह अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग कर कवि राजनेताओं के दोहरे चरित्र को उजागर करते हैं ।

" भारत यदि भूखा है, होने दे
वियतनाम जलता है, जलने दे,
व्यर्थ तू झूलसती है
बोल मेरी मैना, तुझे क्या दु:ख है ?"[70]

दुष्यंत कुमार की कविताओं में जगह-जगह पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है । 'लड़ने के लिए शिथिल अंग-अंग जोड़ेगा', 'जगह–जगह शत्रुओं की फौजों का डेरा है','नगर-नगर/द्वार-द्वार/कोई कुरूक्षेत्र नहीं','कई-कई अग्नियों में','हाय ! पानी में कैसी छलल-छलल होती है','अभी खड़े-खड़े पानी पर फिसल गया ।' ,'सुबह-सुबह नहाने की ठान ली', 'अंधकार जगह-जगह ठहरा हुआ है' ,'यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ','फिर धीरे-धीरे यहाँ का मौसम बदलने लगा है' आदि कुछ ऐसे ही उदाहरण है ।

अंततः दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में विविध प्रकार के अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है । उनकी कविताओं में अलंकारों का सायास प्रयोग नहीं मिलता । उनके यहाँ अलंकार सहज समाविष्ट होकर उक्ति को सार्थक और सम्मोहक बना देने में समर्थ है । अलंकारों के प्रयोग से उनकी कविताओं में रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता आई है । उन्होंने परम्परागत अलंकारों को नई भाव-भंगिमा और सन्दर्भों के साथ प्रस्तुत किया है जिससे उनकी कविताओं का सौंदर्य द्विगुणित हो गया है ।

5. मुहावरे

अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए काव्य में मुहावरों का प्रयोग किया जाता है । मुहावरा शब्द अरबी के 'मुहावरः' शब्द का हिन्दी रूपांतरण है । इसे 'वाग्धारा' भी कहा जाता है । मुहावरा, एक वाक्यांश होता है, जो सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विशेष अर्थ का बोध कराता है । यह शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है । इनके प्रयोग से न केवल अर्थ सौंदर्य बढ़ता है, उक्ति भी चमत्कारपूर्ण और आकर्षक बन जाती है । मुहावरों के प्रयोग से वाक्य के अर्थ में लालित्य, लाक्षणिकता और प्रवाह की सृष्टि होती है । इनका प्रयोग प्रसंगानुकूल किया जाता है । समय और सोच में परिवर्तन के साथ-साथ मुहावरे भी बनते-बिगड़ते हैं । नये परिवेश के साथ नये मुहावरे गढ़े जा रहे हैं । कविता में

मुहावरों का प्रयोग कर कविता को प्रभावशाली बनाया जाता है । भक्तिकालीन कवि सूरदास और रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द के काव्य में मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है । सूरदास की गोपियाँ तो अपनी वाक्-कुशलता के लिए पाठकों के हृदय में स्थायी जगह पा लेती है । कवि घनानन्द के काव्य में मुहावरों का प्रयोग बहुतायत मात्रा में हुआ है । आधुनिक युग के कवियों ने मुहावरों के प्रयोग से अपनी अभिव्यंजना को सशक्त बनाया है ।

नई कविता के कवि दुष्यंत कुमार के काव्य-संसार में मुहावरों का बहुतायत मात्रा में प्रयोग देखने को मिलता है । मुहावरों के प्रयोग से काव्य में प्रभावोत्पादकता आयी है । इसके द्वारा कवि ने सामाजिक यथार्थ को उजागर किया है । समसामयिक राजनीतिक विसंगतियों को मुहावरों के प्रयोग से कवि ने सशक्त ढ़ंग से अनावृत्त किया है । आपातकालीन तानाशाही को चित्रित करने के लिए कवि ने 'जुबान सिल देना', 'ऐहतियात बरतना' जैसे मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया है –

" तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए ।"[71]

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करनेवाले राजनीतिक ताकतों की चालबाजियों को कवि ने मुहावरे के प्रयोग से सशक्त ढ़ंग से अनावृत्त कर दिया है । उर्दू के भी कई प्रसिद्ध लोकोक्ति और मुहावरों को उन्होंने अपने रचना संसार में विन्यस्त कर

लिया है । जैसे–

" हो गई हर घाट पर पूरी व्यवस्था,
शौक से डूबे जिसे भी डूबना है ।"[72]

वास्तव में मुहावरों के प्रयोग से कवि ने अपनी अनुभूति को ,अपने आक्रोश को धारदार बनाया है । 'कई बार' कविता में मुहावरे के प्रयोग से कवि की व्यंजना शक्ति तीव्र हो गई है –

" मैंने कई बार तिलमिलाकर गुस्से से
माचिस निकाली और आग
दिखलाने की कोशिश की
सारी व्यवस्था को
लेकिन उन्हें आँच तक न आई "[73]

कवि ने यहाँ 'आँच तक न आई' मुहावरे के प्रयोग से व्यवस्था की घोर अराजकता को उजागर किया है । उनके काव्य जगत में 'जादू करना' ,'भाषण पिलाना', 'नंगा नर्तन होना', 'आँसू बहाना', 'साँस फूलना', 'बाँहें पसारना','जादू करना', 'शौक से डूबना', 'हथेली सहलाना', 'खून पीना', 'साँचे में ढालना', 'हाथ से फिसलना' , 'आँच न आना' आदि ऐसे मुहावरे हैं, जिनका कवि ने प्रसंगानुकूल सार्थक प्रयोग किया है ।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि वर्तमान जीवन की विसंगति

और विद्रूपताओं को कवि ने मुहावरों के माध्यम से सुन्दर तरीके से चित्रित किया है । उनकी कविताओं में मुहावरे सहज समाविष्ट होकर काव्य-सौंदर्य को बढ़ा देते हैं ।

6. शैली

दुष्यंत कुमार ने गीत और गज़ल दोनों शैली का प्रयोग किया है । उनके गीत और गज़लों में प्रवाह और गेयता निहित है । प्रवाह काव्य-भाषा का एक मुख्य गुण माना जाता है । प्रवाह के कारण भाषा में एक अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि होती है । लयात्मकता जो काव्य की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है, वह प्रवाह के कारण ही आती है । दुष्यंत कुमार की भाषा में सर्वत्र लयबद्धता और नादमयता निहित है, जिससे उनकी भाषा आकर्षक बन पड़ी है –

" सीमाओं में बँधा नहीं हूँ धरती मेरा देश है ।
मेरे कवि का धर्म जागरण है औ' जन–उन्मेष है ।"[74]

दुष्यंत कुमार ने अपनी कई कविताओं में वर्णनात्मक, चित्रात्मक और संवाद शैली की सुन्दर संयोजना की है । कहीं-कहीं पर उनकी भाषा का रूप गद्यात्मक हो जाता है –

" दीवारें होती हैं
और लोग आए दिन उनसे टकराते हैं ,

बुरी तरह घायल हो जाते हैं ,

कई बार गति बिलमा जाती है

रस्ते खो जाते हैं ''[75]

उनकी कविता में प्रयुक्त संवाद शैली का एक उदाहरण देखें –

'' मैं बार–बार इन बच्चों से पूछता हूँ।

मेरे बच्चो !

तुम यहाँ क्या देखने आए हो ?

कटे हुए सिर

धड़हीन चेहरे

विकृत आँखें

और मरी हुई संस्कृति ।

इतनी अधिक कीमत देकर देखने लायक

यहाँ कुछ तो नहीं है ।

लेकिन मेरी कोई सुनता नहीं ।''[76]

कहीं-कहीं पर दुष्यंत कुमार ने अपनी कविता में कथात्मक शैली का प्रयोग किया है । वे कविता में एक कथा के माध्यम से जीवन की कटु एवं तिक्त सच्चाईयों को अनावृत्त करते हैं । 'अपराध','आत्मालाप','एक सफर पर' आदि कविताओं में कवि ने घटना को कथात्मक शैली में व्यक्त किया है ।

7. मिथक

मिथक शब्द मूलत: यूनानी शब्द 'माइथोस' का हिन्दी रूपांतरण है । 'माइथोस' का अर्थ है - 'मुँह से निकला हुआ' । अंग्रेजी में इसके लिए 'मिथ' शब्द प्रचलित है । माइथोस ऐसे आख्यान को कहते हैं, जिसमें तार्किकता नहीं होती । इस तरह मिथक का सामान्य अर्थ हुआ - तर्कहीन आख्यान । मिथक के लिए हिन्दी में 'दंतकथा', 'पुरावृत्त', 'पुराकथा' आदि शब्द प्रचलित है । इसका संबंध पौराणिक कथाओं और रामायण, महाभारत की कथाओं से है । इन पुराकथाओं को आधार बनाकर आधुनिक जीवन-सन्दर्भो को चित्रित किया जाता है । जन भावनाओं के साथ इन कथाओं का घनिष्ट संबंध रहता है ।रामचंद्र तिवारी मिथक की उपयोगिता पर लिखते हैं –''मिथकों के प्रयोग आज का कवि कम से कम दो प्रयोजनों की सिद्धि करता है । एक तो वह आदिम विश्वासों को नये सन्दर्भ से जोड़कर नई अर्थवत्ता प्रदान कर देता है, दूसरे कविता कुछ अधिक सम्प्रेष्य बन जाती है क्योंकि उसे एक सन्दर्भ मिल जाता है ।''[77]

मृगेंद्र राय लिखते हैं – ''मिथकों में ऐतिहासिक यथार्थ की अपेक्षा युगीन बोध और समयोचित संदेश प्रधान होता है ।.....जनभावना से जुड़े होने के कारण इसमें प्रभावान्विति की संभावना भी अधिक होती है । यही कारण है कि रचनाकार इन मिथकों का आधार लेकर अपने समकालीन युगबोध को अभिव्यंजित करता है ।''[78]

स्पष्ट है कि आधुनिक जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विडंबना और विद्रूपताओं को अभिव्यक्ति देने में मिथक पूर्ण समर्थ है, यही कारण है कि कवियों द्वारा मिथकों का प्रयोग आधुनिक काव्य में अधिक हो रहा है । मिथक के प्रयोग से साहित्य को सार्थक और सम्प्रेषणीय बनाया गया । नई कविता के दौर में मिथकों का प्रयोग ज्यादातर काव्य-नाटकों में किया गया । धर्मवीर भारती का 'अँधा युग', कुँवर नारायण का 'आत्मजयी' आदि इस युग के ख्यातिप्राप्त काव्य-नाटक है । कविताओं में भी भाव को सार्थक बनाने के लिए मिथकों का उपयोग किया गया ।

कवि दुष्यंत कुमार ने कई मिथकों को अपने शिल्प में समाविष्ट किया है । उनका 'एक कंठ विषपायी' गीतिनाट्य एक मिथकीय रचना है । उन्होंने अपनी कई कविताओं में मिथकीय चरित्रों के माध्यम से अपनी जीवन-दृष्टि को अभिव्यक्त किया है । 'एक कंठ विषपायी' गीतिनाट्य में जहाँ वे शिव और सती जैसे मिथकीय चरित्रों के माध्यम से समकालीन यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं । वहीं उनकी कविताओं में ज्यादातर मिथक महाभारत से आये हैं । अपनी कविताओं में वे भीम, अर्जुन, कुंती, कृष्ण, अभिमन्यु आदि मिथकीय चरित्रों के माध्यम से समसामयिक यथार्थ और अपनी जीवन-दृष्टि को व्यक्त करते हैं । कुंती जैसे मिथकीय चरित्र के द्वारा वे सृजन की कष्टदायक पीड़ा का हृदयस्पर्शी अंकन करते हैं –

" मेरी कुंठा
रेशम के कीड़ों-सी
ताने-बाने बुनती,
तड़फ-तड़फकर
बाहर आने को सिर धुनती,
स्वर से
शब्दों से
भावों से
औ' वीणा से कहती-सुनती,
गर्भवती है
मेरी कुंठा-क्वारी कुंती ! "[79]

दुष्यंत कुमार ने मिथकों के द्वारा सामाजिक जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है । उनके मिथक उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का प्रमाण देते हैं। 'दिग्विजय का अश्व' शीर्षक कविता में वे मिथकों के माध्यम से बंधनहीनता के महत्व और जरूरतों पर विचार करते हुए, उसे व्यक्ति के सही विकास के लिए जरूरी मानते हैं –

" अस्तबल में बँधा यह निर्वाक प्राणी !
उस 'चमेली' गाय के बछड़े सरीखा

आज बंधनहीन होकर

यहाँ कितना रम गया है !

यह कि जैसे यहीं जन्मा हो, पला हो ।

आज है कटिबद्ध हम सब

फावड़े लाठी सँभाले ।

कृष्ण, अर्जुन इधर आएँ

हम उन्हें आने न देंगे ।

अश्व ले जाने न देंगे ।''[80]

महाभारत के युद्ध के समय कृष्ण ने अर्जुन को मोह रूपी दुर्बलता का त्याग कर कर्तव्य-पथ पर चलने की प्रेरणा दी थी, जिसके परिणामस्वरूप असत्य के ऊपर सत्य की विजय हुई । 'कवि-धर्म ' कविता में दुष्यंत कुमार कृष्ण और अर्जुन के मिथकीय चरित्र द्वारा कवियों को उनका सृजन–धर्म बतलाते हैं । उन्हें समाज में रह रहे दुर्योधन और घृतराष्ट्र की मोहासक्ति से मुक्त होकर सत्य का पक्ष लेने के लिए उत्प्रेरित करते हैं । हमारे समाज में कई ऐसे भाई-बंधु है जो शोषक बने हुए हैं, हमारा हक छिनकर हमें नारकीय जीवन जीने के लिए छोड़ देते हैं । कवि लिखते हैं –

'' पार्थ हूँ न चाहे मैं

किंतु महाभारत-सा युद्ध सामने है

कृष्ण हो न चाहे तुम
किंतु तुम्हें अश्वों की डोर थामनी है
..... देर मत करो अब, हाँ
चंचल इन अश्वों को काबू में कर लो
और रथ बढ़ाओ ।''[81]

महाभारत के युद्ध को सामने रखकर कवि समसामायिक अराजकता को चित्रित करते हैं । इस कविता में मिथक के सहारे आधुनिक युग के ज्वलंत प्रश्नों यथा- भूख, अभाव, घुटन, बेबसी, निराशा आदि पर प्रकाश डाला गया है । कालियादह जैसी पौराणिक घटना को आधार बनाकर कवि ने 'सत्यान्वेषी 'शीर्षक कविता में सत्यान्वेषण की प्रबल लालसा को कृष्ण के मिथक द्वारा प्रकट किया है –

'' सुनो, कृष्ण हूँ मैं,
भूल से साथियों ने
इधर फेंक दी थी जो गेंद,
उसे लेने आया हूँ
(आया था
आऊँगा)
लेकर ही जाऊँगा ! ''[82]

अंतत: मिथकों के माध्यम से कवि ने समसामयिक जीवन यथार्थ को

व्यापक रूप में चित्रित किया है । मिथकों को आधुनिक जीवन-सन्दर्भों के साथ जोड़कर युग के ज्वलंत प्रश्नों पर चिंतन-मनन किया गया है । उनकी कविताओं के चरित्रों के नाम कृष्ण, कुंती, अभिमन्यु, अर्जुन भले ही हो, किंतु वे जो प्रतिपादित करते हैं, वह वर्तमान चिंतन की अभिव्यक्ति है । मिथकों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक जीवन की आशा-आकांक्षा, हास-रूदन, संघर्ष, कुंठा आदि को चित्रित किया है । उनके मिथकों में युगीन बोध और समयानुकूल सन्देश निहित है ।

निष्कर्षत: दुष्यंत कुमार का काव्य-शिल्प उनके भाव और सन्दर्भों के अनुकूल प्रयुक्त हुआ है । उनके काव्य-शिल्प को देखकर लगता है कि जिनके साथ उनका आत्मीय संबंध है, वे उनसे उसी आत्मीय भाषा में बात करते हैं और जिनके प्रति उनमें तीव्र आक्रोश है, उनकी आलोचना अत्यंत तीखे तेवर के साथ करते हैं । उनके शिल्प-विधान में कहीं भी बनावटीपन नहीं दिखता । उनके शिल्प उनकी गहनानुभूति को सहजाभिव्यक्ति देते है । उनके काव्य-शिल्प में जहाँ एक ओर आम-आदमी को अपना अक्स नजर आता है, आत्मीयता दिखलाई देती है, वही दूसरी ओर जनविरोधी शक्तियों को उसमें अपना घिनौना यथार्थ नजर आता है । उनका काव्य-शिल्प कहीं भी युगीन बौद्धिकता से ग्रस्त नहीं दिखाई पड़ता । युगीन सन्दर्भो को चित्रित करने में उनका काव्य-शिल्प पूरी तरह से समर्थ है । दुष्यंत कुमार ने अपनी अभिव्यक्ति को गीत शैली से परिवर्तित कर गज़ल में व्यक्त किया । इसकी वजह शिल्प के प्रति युगानुकूल अतिशय आग्रह नहीं था अपितु

उसके पीछे अपने समयगत सच्चाई को पूरी ईमानदारी से प्रकटकर जन विरोधी ताकतों के हौंसले को पस्त करना था ताकि जनतंत्र में जन–सापेक्ष परिवेश और परिस्थिति की निर्मिति हो । उनके कथ्य के अनुकूल उनके शिल्प भी सामाजिक यथार्थ को समूचे रूप से उजागर करते हैं ।

सन्दर्भ-सूची

1. सं.– अरूण कमल, आलोचना त्रैमासिक सहस्त्राब्दी अंक 43,नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 57

2. उद्धृत, जैन प्रेमलता, समाजवादी यथार्थवाद और हिन्दी कथा साहित्य, शब्दसृष्टि, दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या – 161

3. श्रीवास्तव एकांत, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2010 ,पृष्ठ संख्या – 25

4. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 430

5. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 238

6. सं.– इंद्रनाथ मदान, निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या –124

7. सिंह नामवर, कविता की जमीन और जमीन की कविता, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति, 2011, पृष्ठ संख्या – 107

8. श्रीवास्तव एकांत, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या – 24

9. सं.– विजय बहादुर सिंह , दुष्यंत रचनावली भाग– 1 , किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 370

10. सं.– विजय बहादुर सिंह , दुष्यंत रचनावली भाग– 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 288

11. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 344

12. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 237

13. वही , पृष्ठ संख्या – 13

14. वही , पृष्ठ संख्या – 239

15. सं.– विजय कुमार देव, अक्षरा अंक – 90, भोपाल , जुलाई–अगस्त 2007, पृष्ठ संख्या – 45

16. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 159

17. वही, पृष्ठ संख्या – 228

18. वही, पृष्ठ संख्या – 261

19. वही, पृष्ठ संख्या – 239

20.रोहिताश्व, काव्य-सृजन और शिल्प-विधान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या –206

21. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन,

नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 159

22. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 124

23. वही, पृष्ठ संख्या – 125

24. उद्धृत तिवारी रामचंद्र, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, दूसरा संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या – 172

25. पंत कांता, पंत की काव्य भाषा शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ संख्या – 103

26. श्रीवास्तव एकांत, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या – 23

27. उद्धृत गुप्त उमाकांत, नयी कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृष्ठ संख्या –213

28. उद्धृत गुप्त उमाकांत, नयी कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृष्ठ संख्या –213

29. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 381

30. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन,

नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 192

31. वही, पृष्ठ संख्या – 261

32. वही, पृष्ठ संख्या – 267

33. वही, पृष्ठ संख्या – 283

34. वही, पृष्ठ संख्या – 281

35. वही, पृष्ठ संख्या – 263

36. वही, पृष्ठ संख्या – 263

37. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 335

38. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 285

39. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 346

40. वही, पृष्ठ संख्या – 416

41. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 148

42. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 368

43. वही, पृष्ठ संख्या – 347

44. वही, पृष्ठ संख्या – 347

45. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 244

46. वही, पृष्ठ संख्या – 244

47. वही, पृष्ठ संख्या – 269

48. सं.– डॉ नगेंद्र, भारतीय साहित्य कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981, पृष्ठ संख्या – 751

49. तिवारी रामचंद्र, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, दूसरा संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या – 169

50. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 136

51. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 380

52. वही, पृष्ठ संख्या – 335

53. वही, पृष्ठ संख्या – 382

54. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 261

55. वही, पृष्ठ संख्या – 261

56. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 381

57. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 280

58. वही, पृष्ठ संख्या – 288

59. शुक्ल रामचंद्र, चिंतामणि भाग –1, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सं . 2058 वि., पृष्ठ संख्या – 100

60. पंत सुमित्रानन्दन, पल्लव, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, सातवाँ संस्करण, 1963, पृष्ठ संख्या – 32

61. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 120

62. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 272

63. वही, पृष्ठ संख्या – 290

64. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 295

65. वही, पृष्ठ संख्या – 247

66. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 267

67. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 299

68. वही, पृष्ठ संख्या – 381

69. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग– 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 287

70. वही, पृष्ठ संख्या – 177

71. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 261

72. वही, पृष्ठ संख्या – 270

73. वही, पृष्ठ संख्या –126

74. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 385

75. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 196

76. वही, पृष्ठ संख्या – 227

77. तिवारी रामचंद्र, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना,

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, दूसरा संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या – 190

78. राय मृगेंद्र, हिन्दी काव्य–नाटक और युगबोध, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 135

79.सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 335

80. वही, पृष्ठ संख्या – 346

81. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 147

82. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 380